सन्यास और नारी

डॉ. शशि कुमार ओझा*

विषय परिचय :

वानप्रस्थ के पश्चात् प्रारम्भ होने वाला आश्रम सन्यास आश्रम कहलाता है। पुरुषार्थ के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति इस आश्रम के माध्यम से ही सम्भव है।[1] मनु ने वास्तविक सन्यासी उसे स्वीकार किया है जो लौकिक अग्नि से रहित, गृहहीन, शरीर के रोग-ग्रस्त होने पर भी अपनी चिकित्सा का प्रबन्ध न करने वाला, स्थिर बुद्धि, ब्रह्म का मनन करने वाला और ब्रह्म में भाव रखने वाला हो, उसके लिए निर्दिष्ट किया गया कि वह ब्रह्म के ध्यान में लीन रहे, योगासनों पर बैठा हुआ अपेक्षा से रहित, मांस की अभिलाषा से मुक्त, शरीर मात्र की सहायता प्राप्त (केवल अकेला) मोक्ष-सुख को चाहने वाला इस संसार में विचरण करे।[2] उसे उतना ही भोजन करने का निर्देश दिया गया जितने से उसकी प्राणशक्ति बनी रहे।[3] यह भी कहा गया कि उसे दिन में एक बार ही भिक्षा ग्रहण करना चाहिए क्योंकि ऐसा विश्वास था कि भिक्षा में आसक्त रहने वाला व्यक्ति विषयों में भी आसक्त हो सकता है।[4] सन्यास का प्रचलन प्रायः ब्राह्मणों में ही अधिक था, वैसे जैन और बौद्ध धर्म के भिक्षु-भिक्षुणी सन्यासी के रूप में विद्यमान थे। स्त्रियों के सन्यास के बारे में छिट-पुट उल्लेख ही प्राप्त होते हैं।

स्त्रियों की प्रवज्या पर भी ब्राह्मणों का मत श्रमणों की अपेक्षा भिन्न था। प्रासंगिक है कि *ऋग्वेद* की "सर्वानुक्रमणिका" में घोषा, रोमशा, अपाला, विश्ववारा, सूर्यासावित्री, वाक् आम्भृणी आदि स्त्रियों के उल्लेख मिलते हैं जिन्हें ब्रह्मर्षियों के समान वेद-सूक्तों की रचना करने वाला कहा गया है। उनके द्वारा रचित कुछ सूक्तों में तो उनके नाम भी प्राप्त होते हैं। उदाहरण स्वरूप विश्ववारा, आत्रेयी ने *ऋग्वेद* के पाँचवें मण्डल के 28वें सूक्त की रचना की और अपाला ने आठवें मण्डल के 91वें सूक्त की जिसमें 7 मंत्र हैं। सूर्यासावित्री ने दशवें मण्डल के 31वें तथा 40वें सूक्त की रचना की जिसमें प्रत्येक में 14-14 मन्त्र हैं। वाक् आम्भृणी ने *ऋग्वेद* के दशवें मण्डल के 8 मंत्रों वाले 125वें सूक्त की रचना की।[5]

ये नारियाँ कवित्व-शक्ति से युक्त रही हैं। इन्हें ब्रह्मवादिनी ऋषिकायें भी कहा गया है। किन्तु इनके लिए भिक्षुणी सन्यासिनी या परिव्राजिका शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक काल की नारियाँ भिक्षुणी या सन्यासिनी नहीं बनती थीं। उस युग में धर्म को त्यागकर भिक्षावृत्ति द्वारा जीवन व्यतीत करने वाली हमें किसी भी नारी का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। इसके विपरीत, नारियों के विवाह करने तथा गृहस्थ धर्म का पालन करने के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। आश्विन देवताओं की कृपा से चर्मरोग के ठीक हो जाने पर घोषा के विवाह का उल्लेख है। शची अपने पुत्र तथा पुत्रियों को महान बनाने की कल्पना करती है।[6] उसी प्रकार सूर्यासावित्री द्वारा रचित मन्त्र में स्त्री के अपने सास-ससुर के घर की साम्राज्ञी होने की कल्पना की गयी है।

इस प्रकार से यह तो स्पष्ट है कि संहिता काल के प्रारम्भिक दौर में वैदिक नारियाँ गृहस्थ जीवन में रहकर विद्या के प्रति समर्पित रहती थीं। ऋग्वैदिक काल में नारी-पुरुष के बीच का सम्बन्ध श्रद्धा और भक्ति के सिद्धान्त पर आधारित था जिसमें नारी समाज का यह उद्घोष था कि तुम मेरे प्रति श्रद्धावान रहो, मैं तुम्हारे प्रति भक्ति-भाव से समर्पित रहूँगी। लोपामुद्रा ने पति-पत्नी के आदर्शों में 'आत्म संयम' की शिक्षा दी, विश्ववारा ने कलुषित

---

* प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास विभाग, सतीश चन्द्र कालेज बलिया।

विचारों से बचने को कहा, शाश्वती ने 'नारी बुद्धि और पुरुष आत्मा का प्रतीक है, का सिद्धान्त दिया। सूर्या, दक्षिणा, रोमशा, शची आदि ने अपने-अपने मत का प्रतिपादन किया।[7] यद्यपि सन्यासियों के धार्मिक अनुष्ठानों, यज्ञों आदि में उनका महत्त्व जड़ जमा चुका था पर श्रमण परम्परा में नारी अस्तित्व अभी दिखाई नहीं पड़ता है। उल्लेखनीय है कि ऋक्-संहिता *(ऋग्वेद)* दशम-मण्डल में 'अरण्यानी' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है–सन्यास आश्रम को प्राप्त या जिसकी जिज्ञासा करने वाली सुशिक्षिता नारी।[8] अतः सम्भव है कि नारी को स्वेच्छया सन्यास आश्रम में प्रवेश करने का अधिकार रहा हो। संहिता कालीन श्रमण-परम्परा उपनिषदों के युग में आकर व्यापक स्वरूप धारण करती है। तपस्या, सन्यासी, परिव्राजक, आदि अनेक शब्द प्रचलन में दिखाई देते हैं और ब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग बताते हैं।

छान्दोग्योपनिषद् ब्रह्म तक पहुँचने के दो मार्गों की चर्चा करता है–पहला मौन द्वारा और दूसरा आत्मसंयम एवं तपस्या द्वारा।[9] *बृहदारण्यक-उपनिषद्* में याज्ञवल्क्य ऋषि द्वारा अपनी सम्पत्ति एवं अपनी पत्नियों को छोड़कर वन में जाने का उल्लेख है।[10] याज्ञवल्क्य के इस कार्य के लिए 'प्रवज्या' शब्द का प्रयोग किया गया है। प्रतीत होता है कि परिव्राजक (सन्यासी) लोग गृह-त्याग के समय अपनी सम्पत्ति एवं पत्नियों को त्याग देते थे और निस्पृह भाव से सन्यासी हो जाते थे।

बृहदारण्यक-उपनिषद् से ज्ञात होता है कि जब ऋषि याज्ञवल्क्य संसार से विरक्त होकर वन में जाने लगे तो उनकी पत्नी मैत्रेयी ने पूछा कि "यदि सम्पूर्ण भूमण्डल धन से पूर्ण हो जाय तो क्या मैं उससे मुक्ति प्राप्त कर सकती हूँ, वह आगे कहती है कि "उन वस्तुओं को लेकर मैं क्या करूँगी जिनसे अमरत्व अर्थात् मुक्ति नहीं प्राप्त की जा सकती।"[11] यहाँ मैत्रेयी को "ब्रह्मवादिनी" कहा गया है।[12] ब्रह्मवादिनी नारियों के लिए उपनीत होना एवं अग्नि पूजा करना, वेदाध्ययन करना तथा भिक्षाटन करना आवश्यक था। मैत्रेयी का अपने पति के साथ सन्यास मार्ग का अनुसरण करना इस तथ्य का सूचक है कि उस समय ऐसी परम्परा थी जिसमें स्त्रियाँ भी प्रवज्या धारण करती थीं।

सन्यासियों अथवा भिक्षुणियों का उल्लेख महाकाव्यों में भी हुआ है। *रामायण* में 'भिक्षुणी', 'तपसी', 'श्रमणी' आदि के उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय सन्यासिनियों अथवा भिक्षुणियों का अस्तित्व था और उनकी एक परम्परा थी। *रामायण* में पति के न रहने पर भिक्षुणी जैसा जीवन उत्कृष्ट माना गया है। राम के वन-गमन के समय सीता द्वारा भिक्षुणी जीवन की प्रशंसा की गयी है।[13] अरण्यकांड में शबरी को 'श्रमणी'[14] तथा 'तपसी'[15] कहा गया है। शबरी के भिक्षुणीपन की प्रशंसा करते हुए इसे "श्रमणी संशितव्रताम्" कहा गया है–अर्थात् वह अपने व्रतों के पालन में लगी रहती थी। इससे यह संकेत मिलता है कि श्रमणियों के लिए कुछ व्रतों का विधान था। *महाभारत* से भी ज्ञात होता है कि नारियाँ वन में तपस्या करने चली जाती थीं, आदिपर्व में नारियों द्वारा तपस्या करने का उल्लेख है।[16] इस पर्व से यह ज्ञात होता है कि सत्यवती अपने दो पुत्र-वधुओं के साथ तप करने वन में गयीं और वहाँ तपस्या के द्वारा अपना शरीर त्याग दिया। इसी प्रकार धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती द्वारा घोर तपस्या करने का उल्लेख है।[17] मौसलपर्व में उल्लेख है कि जब कृष्ण मृत्यु को प्राप्त हो गये तो उनकी सत्यभामा आदि पत्नियाँ वन में चली गयीं और कठिन तपस्या में लीन हो गयीं।[18]

महाभारत में सुलभा की कहानी भिक्षुणियों के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत करती है।[19] सुलभा चूँकि योग्य पति नहीं पा सकी थी, अतः वह सन्यास धर्म में दीक्षित हो गयी और इतस्ततः अकेली ही विचरण करती रही। उसने जनक से मोक्ष धर्म पर वार्तालाप किया और जनक को अध्यात्म से भरा हुआ, सारगर्भित उपदेश

दिया। सुलभा के लिए "भिक्षुकी" शब्द का प्रयोग किया गया है। (–योग धर्ममनुष्ठिता महीमचचारैका सुलभा नाम भिक्षुकी) उसे "स्वधर्मेऽसिधृतव्रता" कहा गया है। राजा जनक ने उसे सन्यास धर्म में दीक्षित ब्राह्मणी समझा था, लेकिन उसने अपना परिचय देते हुए कहा कि वह एक क्षत्रिय कन्या है।

उपर्युक्त उदाहरणों से दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। प्रथम तो यह कि स्त्रियाँ भी सन्यासिनी होती थीं। दूसरे सन्यास धर्म में दीक्षित होने के लिए जाति प्रथा बाधक नहीं थी। उल्लेखनीय है कि जैन एवं बौद्ध धर्म में भिक्षुणियों के सन्यास धर्म में दीक्षित होने के लिए जाति बाधक नहीं थी क्योंकि बौद्ध धर्म यह मानता है कि मनुष्य जाति से नहीं बल्कि कर्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होता है। सुलभा के दृष्टान्त से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण स्त्रियाँ सन्यासिनी तो होती ही थीं जैसा कि जनक को शंका हुई थी, किन्तु क्षत्रिय कन्याएँ भी सन्यास मार्ग का अनुसरण करती थीं क्योंकि स्वयं सुलभा ने अपने को क्षत्रिय कन्या बताया था।

संदर्भ

1. जयशंकर मिश्र, *ग्यारहवीं सदी का भारत,* पृष्ठ 133।
2. *मनुस्मृति* 6.49; कोमलचन्द्र जैन : *बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन।*
3. *मत्स्य पुराण* 40, 13।
4. *मनुस्मृति* 6.55।
5. विस्तार के लिए देखिए, मालती शर्मा : *वैदिक संहिताओं में नारी,* चतुर्थ अध्याय।
6. *ऋग्वेद* 10/159/4; 10/85/45, मालती शर्मा : *वही,* पंचम अध्याय।
7. *ऋग्वेद* 1/179, 5/28/8/1; मालती शर्मा : *वही,* पंचम अध्याय।
8. *ऋग्वेद* 10/146/2; देखिए, मालती शर्मा : *वही,* पृष्ठ–190।
9. *छान्दोग्योपनिषद्* 8/5।
10. *बृहदारण्यकोपनिषद्* 4/4।
11. *बृहदारण्यकोपनिषद्* 4/5।
12. पी.वी. काणे : *धर्मशास्त्र का इतिहास,* खण्ड–1, पृष्ठ–219।
13. *रामायण* 2/29/13
14. *रामायण* 3.73/26; 3/74/7।
15. *रामायण* 3/74/10।
16. *महाभारत,* आदिपर्व, 3/74/10।
17. *महाभारत,* आश्रमवासिक पर्व 37वाँ अध्याय।
18. *महाभारत,* मौसलपर्व 7/74।
19. *महाभारत,* शान्तिपर्व 320/7/193।

•